'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक २ | वाराणसी, शनिवार, ३ जनवरी १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

सर्वोदय लाने के लिए जी जान से लगें

[विनोबाजी सबेरे लगभग आठ बजे आश्रम में पहुँचे। आरम्भ में बालिकाओं ने 'सबसे ऊँची प्रेम सगाई' भजन गाया। भजन सुनते समय विनोबाजी की आँखों से अश्रुधारा बहती रही।]

'सूर कूर यहि लायक नाहीं।' मैं कूर तो नहीं हूँ, पर कठोर हूँ। और 'यहि लायक नाहीं' तो अब मैं रहा नहीं। परमेश्वर की प्रीति के मैं बहुत ही लायक बन गया हूँ। उसकी प्रीति मुझे निरंतर मिल रही है और उसकी प्रीति के अनुभव के बिना मेरा एक दिन भी खाली नहीं जाता। मैं कठोर हूँ, इसका मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। कारण, यह कठोरता मेरी ढाल है। बापू ने अपने बारे में लिखा है कि "शर्मीलापन मेरी ढाल थी।" मैं शर्मीला नहीं हूँ। आक्रमणकारी सामनेवाले का मुझे कभी डर नहीं लगा। पर मैं बड़ा ही कठोर हूँ। यह कठोरपन मेरी ढाल है, वैसे ही जैसे नारियल। वह ऊपर से बहुत कड़ा होता है, पर भीतर से उसमें रस भरा रहता है। आज मेरी आँखों से जिस प्रकार आँसू झरते हैं, उसी प्रकार जब मैं इस आश्रम में था, तब भी मेरी आँखों से आँसू झरते रहते थे। आज सबके सामने मेरे आँसू बहते हैं, पर उस समय एकान्त में बहते थे। मैं तो परमेश्वर के सिवाय और किसी उद्देश्य से घर छोड़कर बाहर नहीं निकला था! मेरा वह उद्देश्य आज भी चालू है, पर मैंने अपना जीवन बहुत कठोर बना लिया था। और मैं मानता हूँ कि उसीके कारण मैं बच गया हूँ, नहीं तो मैं न बचता। व्यवहार में यह कठोरता दोष मानी जाती है, पर कहींपर वह गुण भी बन सकती है। जो जहर, जो विष सबके लिए मारक होता है, वह विष शंकर भगवान के लिए नाम-स्मरण कराने का साधन बन जाता है। इस प्रकार सामान्य रीति से व्यवहार में जो दोष गिना जाता है, वह भी साधक की दृष्टि से कितनी ही बार गुण बन जाता है।

सत्यनिष्ठा का गुण

मैं एक गुण लेकर चला। उसके साथ कितने ही दोष भी ले आया। यह जो एक गुण था, वह था सत्य की खोज के लिए छटपटाहट—सत्यनिष्ठा। दोष तो अनेक थे। इनमें मैं कठोरता की गिनती नहीं करता। पर मेरे मित्र भी मेरी कठोरता को दोष के रूप में देखते थे। अपरिचित लोग तो इसे आत्मविकास में कमी ही मानते थे और ऐसा मैंने सुना भी था। ये सारी टीका-टिप्पणियाँ मेरे कानों में पड़ती थीं। इतना होने पर भी उस समय भी मेरी कठोरता मुझे अपना दोष नहीं जान पड़ती थी। आज भी जब मैं पिछले जीवन पर दृष्टिपात करता हूँ तो मैं उसका बड़ा आभार मानता हूँ। पहले से ही किसीको गोपियों की भाँति भक्ति की प्राप्ति हो गयी हो तो बात दूसरी है; परन्तु यदि वैसा न हो तो आज प्रेम के नाम पर जो वस्तु चलती है, वह बिलकुल गलत है। मैं इस प्रेम को कोई मूल्य नहीं देता। प्रेम अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है, ऐसा मैं मानता हूँ। आज प्रेम के नाम पर जो चीज चलती है, वह प्रेम नहीं, वासना है। इस वासना के बंधन को लेकर लोग अरस-परस प्रेम का आभास उत्पन्न करते हैं। पर यह आभासमात्र है। जब तक पारस्परिक सम्बन्ध में निष्कामता नहीं आती, तब तक प्रेम का जो आभास दीख पड़ता है, वह बाधक ही होता है, साधक नहीं। दूसरे लोग मुझमें कठोरता का जो भारी दोष देखा करते थे, वह मैं नहीं देखता था। पर दूसरे अनेक दोष मुझमें थे।

जीवन की एकरसता और अखण्डता

कल की सार्वजनिक सभा में मैंने कहा था कि आश्रम में आने पर आश्रम का जो जीवन-स्वरूप मेरी दृष्टि में पड़ा, उससे मुझे बहुत कुछ मिला और उसके फलस्वरूप मुझे यह अनुभव हुआ कि जीवन एकरस और अखण्ड है। जैसा कि मैंने कल कहा था, जिस प्रकार कोई मनुष्य अकिंचन बन बैठता है, दरिद्र हो जाता है तो उसके सगे-सम्बन्धी एक-एक कर उसे छोड़कर चले जाते हैं, उसी प्रकार मेरे दोष भी एक के बाद एक कर मुझे छोड़कर चले गये। तो व्यक्तिगत रूप से इस भूमि का मुझपर अत्यधिक उपकार है। जिस प्रकार मैं अपनी माता का उपकार नहीं भूल सकता, क्योंकि उसने मुझे भक्ति की शिक्षा दी, जिस प्रकार मैं अपने पिताजी का उपकार नहीं भूल सकता, क्योंकि उन्होंने मुझे योगयुक्त जीवन किस प्रकार जीया जाय, इसकी शिक्षा दी, उसी प्रकार मैं इस भूमि का उपकार भी कभी भूल नहीं सकता। कारण असंख्य दोषों का मुझे यहीं भान हुआ और उनके निराकरण का उपाय भी सहज ही, बिना प्रयत्न किये मिल गया। बापू कभी खुद को न किसीका गुरु मानते थे और न किसीको अपना चेला ही समझते थे। इसी तरह मैं भी न किसीका गुरु हूँ और न किसीका चेला। यद्यपि मैं गुरु का महत्त्व बहुत मानता हूँ। गुरु केवल स्पर्श से शिष्य का उद्धार कर देते हैं, केवल दर्शन या केवल वाणीमात्र से उसे उबार देते हैं। केवल संकल्प से ही शिष्य का उद्धार करने-

वाले पूर्णात्मा गुरु हुआ करते हैं। मैं भी ऐसा मानता हूँ। फिर भी यह कल्पना की ही बात है। व्यावहारिक रूप में तो मैं ऐसे किसी गुरु को नहीं जानता। अतएव यह गुरुत्व की भाषा छोड़ मैं इतना ही कहता हूँ कि मुझे यहाँ जो मिला, वह आज तक मेरे काम आ रहा है। मेरी यह भूदान-ग्रामदान-यात्रा, जो कि एक प्रेम-यात्रा है, यहाँ की गयी साधना के प्रति आभारी है। इससे पहले मैं जो साधना करता था, वह केवल भावनारूप ही थी। उसके बाद आश्रम की साधना चली। आश्रम में आने के बाद तो मुझे दृष्टि भी प्राप्त हुई। यह सारा उपकार यहाँकी भूमि का है। इसलिए यह स्थान मेरे लिए दृष्टिदायक मातृ-स्थान है।

भरत-भक्ति का अनुभव

यहाँ आप लोग प्रेम से मेरा स्वागत करने के लिए उपस्थित हैं और चाहते हैं कि उपदेश के तौर पर मैं दो शब्द कहूँ। लेकिन मैं कुछ उपदेश नहीं दे सकता। मैं तो यहाँसे बहुत कुछ लेना ही चाहता हूँ। यहाँ आप जो लोग रहते हैं, उन्हें मैं दूसरी ही दृष्टि से देखता हूँ। मुझे लगता है कि आप सभी अत्यन्त भाग्यवान हैं कि ऐसी भूमि पर निवास करने का आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ है। साथ ही मुझे अपना जीवन भी अत्यन्त भाग्यवान मालूम पड़ता है, कारण इसमें मुझे भरत-भक्ति का अनुभव होता है। शास्त्रों में जिसे वियोग-भक्ति कहा जाता है, उसका मुझे अनुभव हुआ है। बापू से दूर रहकर उनके विचारों का मैं बड़ी ही बारीकी से अध्ययन करता और उसमें से जो मिलता, उस पर अमल करने का यथाशक्ति यत्न भी करता था। यह भी मेरा बड़ा-से-बड़ा सौभाग्य था। लेकिन आपका भाग्य तो इससे भी बड़ा था। कारण आप इसी भूमि पर रह रहे हैं। मतलब यह कि जो भाग्य लक्ष्मण को प्राप्त हुआ था, वही आपको भी प्राप्त है। कितने ही लोग यहाँ ऐसे हैं, जो बापू के जमाने से ही यहाँ रह रहे हैं। जैसे छगनभाई, काशीबेन आदि। बीच में भले ही ये लोग कहीं अन्यत्र गये हों, पर इनका मूलस्थान यही रहा है। इसलिए आप सब लोग अत्यन्त भाग्यवान हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। मेरी तो यहाँ तक भावना है कि आप लोगों के दर्शन से ही मैं पावन हो जाऊँगा। आपको लगता है कि मेरे दर्शन से आप पावन होंगे तो मुझे भी यही लगता है कि आपके दर्शन से मैं पावन होऊँगा। इसमें कोई अशक्य या अनुचित बात नहीं। इसे मैं सर्वथा उचित ही मानता हूँ। इसीका नाम है :

'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।'

याने एक-दूसरे को भगवान के रूप में देखें और ऐसी भावना करें तो आप परमश्रेय प्राप्त करेंगे। इसी तरह हम लोग एक-दूसरे को आध्यात्मिक बल प्रदान कर सकते हैं। ऐसा उज्ज्वल मार्ग हम लोगों को प्राप्त हो गया है, जिसपर हम आँख बन्द कर चलें, बेतहाशा दौड़ें तो भी न गिरेंगे और न ठोकर ही खायेंगे। भागवत-धर्म के बारे में एक बहुत ही सुन्दर श्लोक है :

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
यावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥

याने भागवत-धर्म ऐसा है कि उसपर आस्था रखकर जो मनुष्य काम करेगा, उसके हाथ से कभी भी प्रमाद, भूल, गलती या दोष नहीं हो सकते। बापू ने जो अहिंसा का मार्ग ढूँढ़ निकाला है, उसपर यही बात सर्वथा लागू होती है। इसलिए ऐसे सुन्दर मार्ग पर हम लोग आँख मीचकर चलें तो किसी तरह डरने की कोई बात ही नहीं। ऐसा सुन्दर मार्ग हमें मिला है तो हम सब इसपर क्यों न चलें? भगवान हमें ऐसी ही सद्बुद्धि दे, यही मैं उससे प्रार्थना करता हूँ।

सर्वोदय-राज्य कैसे बने?

यह जो काम मैंने उठाया है, उस बारे में मैं चाहता हूँ कि हम सब मिलकर जोर-शोर से काम करें। यदि ऐसा न करें तो सर्वोदय-राज्य कायम होने की आशा भले ही हम करें, लेकिन उसे लाने में हम जो यत्न कर सकते थे, उसे हमने नहीं किया, यही कहा जायगा। आज सर्वोदय का नाम तो सर्वत्र लिया जा रहा है। आज की सरकार भी सर्वोदयी है और वह कुछ-न-कुछ मदद करने के लिए उत्सुक भी रहती है। फिर भी जब तक सर्वोदय का विचार सार्वभौम रूप में मान्य न हो जाय, तब तक वह जीवन में केवल रुचि लानेवाली वस्तु ही रहेगी। उससे सर्वोदय का राज्य नहीं हो सकता। अभी तक करुणा की शक्ति पैदा नहीं हुई है। आज तो करुणा की रुचि, करुणा का स्वाद ही पैदा हुआ है। भोजन में जरा-सा नमक डालने से रुचि आ जाती है। लेकिन भोजन में नमक ही मुख्य नहीं होता, दाल-भात और शाक ही मुख्य है। इसी तरह जीवन में थोड़ी करुणा हो तो अच्छा है। उससे जीवन में थोड़ी करुणा पैदा हो सकती है। लेकिन वह करुणा राष्ट्र-रक्षण के काम में न आयेगी। इसलिए अगर हम यह साबित न कर दिखायें कि करुणा में राष्ट्र-रक्षण और समाज को खड़ा करने की तथा समाज पर आक्रमण करनेवाली शक्ति का मुकाबला करने की शक्ति है तो ऐसी करुणा पहले भी थी, आज भी थोड़ी बहुत है और कल भी मौजूद ही रहेगी। उससे करुणा का राज्य नहीं बन सकता।

करुणा का साम्राज्य

एक अमेरिकन भाई ने मुझसे सवाल पूछा था कि आप किसलिए यह सारा प्रयत्न कर रहे हैं। इसपर उनके साथ अंग्रेजी में बातचीत चली। मैंने कहा : 'किंगडम् ऑफ काइंडनेस' की स्थापना करना चाहता हूँ। याने प्रेम और करुणा का राज्य लाना चाहता हूँ। ईसा ने 'किंगडम ऑफ गॉड' (ईश्वरीय राज्य) की भाषा बोली थी, उसके बदले मैंने 'किंगडम ऑफ काइंडनेस' शब्द का उपयोग किया है। जिस समाज में हम रहते हैं, उसके जीवन से समरस होकर हमें यह विचार उसके समक्ष रखना चाहिए। जैसे विभिन्न राजनीतिक दल अपनी-अपनी सत्ता के लिए मतदान प्राप्त करते हैं, वैसे हमें सत्ता हाथ में नहीं लेनी है। हम तो समाज में शान्तिमय क्रान्ति करना चाहते हैं और उसके लिए सारी जनता की सम्मति हमें प्राप्त करनी है।

अगर सर्वोदय-पात्र की बात सारे भारत में फैल जाय और घर-घर वह रखा जाय तो वह सर्वोदय-विचार के लिए सक्रिय लोकमत माना जायगा और उसमें से जो शक्ति पैदा होगी, उससे हमारे सेवक समाज में सामर्थ्यवान हो सकेंगे। वे जो करेंगे, उसका असर शासन पर भी हो सकेगा और आज के समाज का भी परिवर्तन हो सकेगा। तभी हम करुणा का राज्य लाने की सच्ची आशा कर सकते हैं। इसलिए इस काम में आप सभी कुछ मदद कर सकते हों तो करें, यही आप सबसे मेरी प्रार्थना है।

साबरमती (अहमदाबाद) २१-१२-'५८

◆◆◆

लोकशाही पर हमला हो तो !

आप सबको देखकर मुझे बहुत आनन्द होता है। पुरुषों से स्त्रियों की संख्या कुछ ज्यादा देखकर मुझे बहुत ही हर्ष होता है। बहनों का काम इसी तरह आगे बढ़ना चाहिए, तभी दुनिया आगे बढ़ेगी और अपना देश भी आगे बढ़ेगा।

आज सुबह स्वागत में जो उत्साह और प्रेम देखा, वह उत्साह और प्रेम गुजरात में और दूसरे प्रान्तों में भी इन सात-आठ सालों से मैं सतत देखता आया हूँ। इतना सारा प्रेम और उत्साह रचनात्मक रीति से काम में प्रकट हो और उसमें से शक्ति पैदा हो तो हमारा देश बहुत बड़ा काम कर सकता है। इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है।

अहिंसा परमेश्वर का सन्देश

आज सुबह रविशंकर महराज ने बात निकाली कि मध्य-युग में हिन्दुस्तान में महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार, बंगाल, कर्नाटक आदि सभी जगह पर सन्त हो गये। मैंने उसमें एक बात और जोड़ दी कि उसी समय यूरोप में भी सन्त हुए। उसके पहले सारी दुनिया में धर्म-संस्थापक हो गये। ईसामसीह, जरथोस्त्र, महावीर, बुद्ध, ला-ओ त्से, कन्फ्यूशियस—इस तरह सुदूरपूर्व से याने चीन, एशिया माइनर तक उस वक्त सारा समाज धर्म-संस्थापकों का सन्देश सुनाता था। एक जमाने में एक तरह की हवा सारी दुनिया में बहती है। आज विज्ञान-युग है। इसलिए किसी भी देश में कोई भी घटना घट जाय तो सारी दुनिया के लोगों को फौरन जानकारी मिल जाती है। पुराने युग में दुनिया में सर्वत्र धर्म-संस्थापक हो गये। इसका अर्थ यह है कि दुनिया में विज्ञान के प्रचार के साधन हों या न हों, परन्तु परमेश्वर की इच्छा दुनिया में एक स्वतन्त्र काम कर रही है और यह इच्छा ही विचार का प्रचार करती है।

विचार का प्रचार परमेश्वर की इच्छा से होता है। इसके लिए मनुष्य, औजार और साधन निमित्तमात्र होते हैं। एक-एक युग के लिए ईश्वर का एक-एक सन्देश होता है। आज इस युग के लिए परमेश्वर का सन्देश अहिंसा का है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा आनी चाहिए। परमेश्वर का यह सन्देश लोगों के पास पहुँचाने के लिए कोई एक मनुष्य निमित्तमात्र हो जाता है। उस मनुष्य के शब्द सुनने की उत्सुकता लोगों में बहुत होती है। अगर अपने व्याख्यान में लोगों को प्रेम और त्याग का सन्देश सुनाने के बदले हम कहते कि इस दुनिया में हमें चार दिन रहना है तो हम सारी तकलीफ क्यों भोगें? हम मनमाना भोग भोग लें तो कितने लोग मेरी बात सुनने आते? आज मेरी बात सुनने के लिए लोग इसलिए आये हैं कि जहाँ-जहाँ त्याग और प्रेम की बात होती है, वहाँ वे सुनने के लिए आते हैं, फिर भले ही त्याग करने में मुश्किल होती हो और मोह के कारण जितना करने की इच्छा हो, उतना कर भी न सकते हों तो भी लोगों को त्याग, प्रेम और करुणा का विचार सुनना प्रिय है। यह सन्देश उन्हें प्रिय होता है, क्योंकि परमेश्वर की इच्छा इस तरह काम कर रही है। परमेश्वर की इच्छा है, काल-पुरुष की माँग। युग-धर्म की बात लोगों को अच्छी लगती है, इसलिए लोग आज अहिंसा की बात करते हैं। आज सारी दुनिया में सर्वत्र हिंसा चलती है। बड़े-बड़े शस्त्रास्त्र बढ़ रहे हैं। फिर भी सारी दुनिया में विचार करनेवाले लोगों को आज यह विश्वास नहीं है कि शस्त्र से किसी प्रश्न का हल निकल सकेगा। एक जमाने में शस्त्रास्त्र पर जो विश्वास था, वह आज नहीं रहा है। जिन लोगों का शस्त्रास्त्र पर विश्वास था, आज वे भी विश्वास नहीं रखते हैं, ऐसी स्थिति आज दुनिया में है। परन्तु दूसरा कुछ सूझता नहीं है और प्रश्न सामने खड़े हैं, इसलिए शस्त्रास्त्र बढ़ाते जाते हैं। ऐसा चक्र चल रहा है।

लोकशाही पर हमले का प्रश्न

आज हिन्दुस्तान में हमें लश्कर रखना पड़ता है। पाकिस्तान के डर से हम वह रखते हैं, ऐसा हम कहते हैं। पाकिस्तान को भी हमारे डर से लश्कर रखना पड़ता है, ऐसा वहाँके लोग कहते हैं। परस्पर एक-दूसरे के भय से हम लश्कर रखते हैं, ऐसा मानते हैं। बाहर से आक्रमण होगा तो देश के रक्षण का काम सेना करेगी, ऐसा मानकर लोकशाही के रक्षण के लिए सेना रखी जाती है और इसके पीछे हर साल तीन सौ करोड़ रुपयों का खर्च किया जाता है। अब बहुत बड़ा सवाल यह पैदा हुआ है कि अगर देश का यही लश्कर स्वयं इसी देश की लोकशाही पर हमला करे तो फिर यह देश क्या करेगा?

सेना से सुरक्षा नहीं

आज पाकिस्तान, बर्मा, सूडान, मिस्र आदि देश लश्कर के हाथ में आ गये हैं। दुनिया को जिस फ्रेंच-साहित्य ने प्रेरणा दी थी और जिस फ्रेंच क्रांति के तत्त्वज्ञान से दुनिया को स्फूर्ति मिली थी, उस देश में भी आज लश्कर के मनुष्यों के हाथों में सत्ता आ गयी है। मैं यह नहीं कहना चाहता हूँ कि लश्कर के जो लोग अपने हाथ में सत्ता लेकर बैठे हैं, वे सारे दुर्जन हैं या वे लोगों को तकलीफ देंगे। वे बहुत अच्छे मनुष्य होंगे और लोगों के हित में उन्होंने काम किये होंगे, परन्तु सवाल यही है कि अगर लोकशाही पर आक्रमण होगा तो फिर क्या होगा? अच्छा कारोबार तो राज्यशाही में भी राजा लोग चलाते थे।

परन्तु आज हम राज्यशाही को मान्य नहीं करते हैं। आज भले ही लश्करी सेनापति, जो फ्रांस, पाकिस्तान, बर्मा, सूडान आदि देशों में राज्य पर कब्जा करके बैठे हैं, वे भले ही अच्छे लोग हों और भले ही लोगों को सुख भी देते हों, फिर भी यह लोकशाही पर आक्रमण है कि नहीं? अगर हमारे देश पर बाहर के लोगों का आक्रमण हुआ तो सेना हमारा रक्षण करती है, परंतु हमारी सेना के पंजे में अगर देश आ जाय और लोकशाही पर वह हमला कर दे तो क्या होगा? मैं यह नहीं कहना चाहता कि ऐसा होगा। ऐसी स्थिति अभी हिन्दुस्तान में नहीं है, क्योंकि यहाँ एक ऐसा पुरुष बैठा है, जिस पर लोगों की श्रद्धा है। परन्तु मैं स्वतन्त्र प्रश्न आपके सामने पेश करता हूँ कि लोकशाही पर राष्ट्र के ही लश्कर का आक्रमण हो तो क्या होगा?

लोकशाही केवल लश्कर के आधार पर निभ नहीं सकेगी, इतना हमें समझना चाहिए, फिर भले ही हम लश्कर रखें। अगर परदेश के आक्रमण का डर हो और लोगों में इतनी हिम्मत और शक्ति न आयी हो तो लश्कर भले ही रखें, परन्तु हम ऐसे भ्रम में न रहें कि सेना रखेंगे तो लोकशाही बिलकुल सुरक्षित रहेगी। लोकशाही तो तभी सुरक्षित रहेगी, जब लोग के अन्दर हिंसा की विरोधिनी और सरकार से भिन्न कोई शक्ति उत्पन्न होगी। ऐसी स्वतन्त्र शक्ति हमारे देश में उत्पन्न होनी चाहिए, ऐसा मेरा प्रयास चलता है। इसलिए मेरी इस पदयात्रा में भूदान, ग्रामदान, संपत्ति-दान की बात चलती रही है। मेरी यह भी कोशिश चलती है कि इस देश में स्वतन्त्र लोकशाही निर्माण हो। इसमें लोगों को बहुत उत्साह है और लोग बहुत प्रेम से इस विचार का स्वागत करते हैं। लोग मानते हैं कि यह विचार तारक विचार

है। अभी हिंदुस्तान में भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्ष काम कर रहे हैं और वे सब-के-सब तंग आ गये हैं। लोग चाहते हैं कि उन्हें ऐसी कोई राह मिले, जिससे वे राजनैतिक झगड़ों से बच सकें और अपनी शक्ति खड़ी कर सकें। आज चुनाव में कांग्रेस खड़ी होती है तो कांग्रेस को मत देते हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि लोगों को कांग्रेस पर विश्वास है। इसका अर्थ इतना ही है कि दूसरे सारे पक्षों पर लोगों का अधिक अविश्वास है। परन्तु केवल मत देने से क्या होता है? इस तरह जनता का पूरा सहकार सरकार को नहीं मिलता। आज पंचवार्षिक योजनावालों का मुख्य सवाल यही है कि जिस लोक-हित के लिए योजना चलती है, इसके लिए लोगों में जो उत्साह पैदा होना चाहिए, वह क्यों नहीं होता है?

सहकार के बिना देश कैसे बढ़ेगा?

आज लोकशाही की बड़ी योजना बनती है, फिर भी लोगों में विश्वास क्यों नहीं पैदा होता? हमारे यहाँके लोग आजकल सारी दुनिया में घूमते हैं। चीन, रूस, इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि की बड़ी लम्बी-लम्बी यात्राएँ करके आते हैं। वे कहते हैं कि चीन के लोगों का सरकार को बहुत सहकार मिलता है। सरकार की लोक-हित के लिए जो योजनाएँ होती हैं, लोग तुरन्त ही उन योजनाओं को स्वीकार कर लेते हैं। अपने देश में ऐसा क्यों नहीं होता है?

सरकार के सामने चुनाव में चुनकर आने का सवाल नगण्य है। महत्त्व का सवाल तो यह है कि सहकार के बिना देश आगे बढ़ेगा कैसे? सरकार के ध्यान में यह बात आ गयी है कि केवल सरकार की शक्ति से देश का काम नहीं चलेगा। देश में लोक-शक्ति खड़ी करनी चाहिए। वह लोक-शक्ति किस तरह खड़ी होगी, कौन खड़ी कर सकता है, यह सवाल है। लोक-शक्ति सरकार के नियंत्रण से, हुक्म से या कानून से पैदा होनेवाली नहीं है। आज सरकार कोशिश करती है कि गाँव-गाँव में ग्राम-पंचायत हो और ग्राम-पंचायत को सरकार कुछ अधिकार दे। सरकार कहती है कि ग्राम-पंचायत अगर ज्यादा अच्छी चलेगी और उससे अगर लोगों की योग्यता बढ़ेगी तो हम ग्राम-पंचायत को ज्यादा अधिकार देंगे। मैं पूछता हूँ कि आप कौन हैं अधिकार देनेवाले? इसका अर्थ यह है कि आज जो ग्राम-पंचायत है, वह गाँव में से खड़ी नहीं होती है, सरकार की तरफ से खड़ी होती है और वह ऊपर-ऊपर की प्रेरणा से होती है। याने सत्ता का बँटवारा होता है। वह सत्ता की ही संस्था है, सेवा की संस्था नहीं है। सत्ता का बँटवारा करके किसी मनुष्य के हाथ में सरकार सत्ता देती है और गाँव का नेतृत्व खड़ा करना चाहती है। गाँव का नेतृत्व गाँव से ही होना चाहिए, ऊपर से नहीं। अभी जो चलता है, उससे लोक-शक्ति निर्माण नहीं हो सकती, क्योंकि लोक-शक्ति सरकारी नियंत्रण से नहीं होती है। लोक-शक्ति खड़ी होगी तो सरकार ग्राम-स्वराज्य के काम में मदद कर सकती है। परन्तु शक्ति को ही खड़ा करने का काम सरकार या कोई भी राजनैतिक पक्ष नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में जनता सर्वोदय-विचार का नाम सुनकर बड़ी उत्कंठा से उसकी ओर देखती है। जनता की यह आशा वाजिब है।

सर्वोदय-विचार में जनता आशा रखती है, यह ठीक है; परन्तु अगर वह सर्वोदय-विचार के नेताओं पर ही विश्वास रखे तो उसकी आशा बिलकुल ही गलत है। सर्वोदय में नेतृत्व नहीं होगा। सर्वोदय में सेवकत्व होता है। आजकल ग्राम-नेतृत्व आदि की बातें चलती हैं, परन्तु वह सारी मिथ्या हैं। सर्वोदय में नेता तो हो नहीं सकता है, सेवक होता है, सेवकत्व होता है, गण-सेवकत्व होता है, तभी सर्वोदय होता है। समाज अपनी सेवा के लिए खुद उठ खड़ा होता है, तभी यह होता है।

हिंदुस्तान में सबसे बड़ी जो मुश्किल है, वह यह है कि लोगों की तरफ से लोक-शक्ति निर्माण नहीं होती। लोक-शक्ति सरकार से या राजनैतिक पक्ष की ओर से नहीं खड़ी होगी, यह बात बिल्कुल निश्चित है और यह बात लोग समझ गये हैं। परन्तु लोगों की तरफ से लोक-शक्ति निर्माण करने में हिंदुस्तान में मुख्य दिक्कत आती है।

हिंसा पर जनता का विश्वास

आज सुबह यहाँ मेरे स्वागत में बहुत उत्साह और प्रेम देखने को मिला, परन्तु अगर इस उत्साह और प्रेम से कोई रचनात्मक शक्ति निर्माण होगी तो काम चलेगा, नहीं तो प्रेम का ज्वार यों ही चला जायगा। आज किसी चीज की जरूरत है तो वह यह कि अब हिंसा की जो शक्ति प्रकट हुई है, उसके विरोध में अहिंसा की शक्ति, प्रेम की शक्ति का दर्शन होना चाहिए। अयूबखान ने हुक्म किया, उसके हुक्म से भय पैदा हुआ और परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार वगैरह कम हो गये। यह सारा कितने दिन तक टिकेगा, यह मैं नहीं जानता; परन्तु इतना निश्चित है कि लोगों को हिंसा का भय दिखाकर बहुत अच्छे काम भी उनसे करवा सकते हैं। वैज्ञानिक, मुत्सद्दी और वीर पुरुष, तीनों ने मिलकर हिंसा की शक्ति को इस तरह विकसित किया है कि जिससे हिंसा भी मनुष्य से सामूहिक रूप में अच्छा काम करवा सकती है।

दंड में भी धर्म है, ऐसा पुराने ज्ञानी कहते थे। धर्म-कार्य दंड से कर सकते हैं, यह सिद्ध वस्तु है। हिंसा के तरीके आज किसीको पसंद नहीं हैं। ऐसा कोई नहीं होगा, जिसे हिंसा अच्छी लगती हो। तिस पर भी आज दुनिया में कुछ-न-कुछ हिंसा काम करती है और इसीलिए टिकती है। लोगों का विश्वास अभी तक हिंसा पर रहा है, क्योंकि हिंसा में एक ऐसी शक्ति का आविष्कार हुआ है कि उसके द्वारा समाज से ही अच्छे काम तुरन्त करवा सकते हैं, यह शक्ति अहिंसा में प्रकट होनी चाहिए। हिंसा बहुत संघटित, सुव्यवस्थित, शास्त्रीय और मर्यादायुक्त हो गयी है। इसलिए उसमें एक शक्ति प्रकट हो गयी है, ऐसी शक्ति प्रेम में प्रकट होगी क्या, यही सवाल है।

निवृत्ति का गलत विचार

हिन्दुस्तान में सात्त्विक लोग समाज के काम में नाहक हाथ डालना पसंद नहीं करते हैं। कौन झंझट करे और कौन लोगों में जाय? तत्वज्ञान, भक्ति-मार्ग, ज्ञान मार्ग—तीनों में निवृत्ति का यह विचार बैठ गया है और इस विचार के कारण सात्त्विक मनुष्य किसी तरह की तकलीफ नहीं देते हैं। हिंदुस्तान का मुख्य दुःख आज यही है।

लगभग एक साल हुआ, मैंने शांति-सैनिकों की माँग की है। मुझे लगभग चार सौ शांति-सैनिक मिले हैं। पाँच हजार मनुष्यों की सेवा करने के लिए एक शांति-सैनिक चाहिए। सारे हिंदुस्तान में कम-से-कम पचहत्तर हजार शांति-सैनिक चाहिए। चार सौ मनुष्य हासिल करने के लिए एक साल लगा तो पचहत्तर हजार मनुष्य हासिल करने के लिए कितने साल लगेंगे? त्रैराशिक करो तो फिर विनोबा की बात चलेगी या अयूबखान की? यह आपके सामने एक सवाल है।

आप कहेंगे कि हमने विनोबा के प्रवचन तो सुने, परन्तु विनोबा का कहना नहीं माना, क्योंकि उसके पास दंड-शक्ति नहीं है। दंड-शक्ति जिसके पास है, उसकी बात लोग मानते हैं, पर मैं

प्रेम से विचार समझाता हूँ तो नहीं मानते। हम भागवत सुनते हैं, परन्तु अपना जीवन तो कानून पर ही चलता है। जीवन में भागवत का कानून नहीं चलता है। जीवन में सरकार का कानून लागू होता है। परन्तु हम मानते हैं कि भागवत सुनने से परलोक सध जाता है, इसलिए पढ़ना चाहिए। यह एक दूसरी मुश्किल है। एक तो निवृत्ति के लिए गलत खयाल मनुष्य के मन में भरा रहता है और दूसरा परलोक पर उसकी श्रद्धा रहती है। दोनों के कारण हिंदुस्तान की बड़ी मुश्किल है।

निवृत्ति में विश्वास रखनेवाले मनुष्य का अर्थ क्या है, यह जरा समझ लेना चाहिए। ये मनुष्य 'शुगर कोटेड' होते हैं। उन लोगों में अंदर से तमोगुण भरा होता है और बाहर से सात्त्विक गुणों का 'शुगर कोटिंग' होता है। इसलिए वह मनुष्य परमार्थ के नाम से ध्यान-धारणा करता है, माला जपता है, यों उसका तत्त्वज्ञान चलता है। हिंदुस्तान में यह बड़ी दिक्कत है। दूसरी दिक्कत यह है कि हम जो कुछ धर्मकार्य करते हैं, भगवद्गीता आदि पढ़ते हैं, वह परलोक के लिए।

धर्मग्रन्थों का पाठ परलोक के लिए

भगवद्गीता का उपयोग जीवित पिता को या जीवित पुत्रों को नहीं होता है, परन्तु मरने के बाद भगवद्गीता का पारायण चलता है। जो भगवद्गीता सारे जन्म में न पढ़ी हो, वह दो घंटों में पूर्ण करते हैं, ताकि पिता को स्वर्ग में अच्छी गति मिले। इस तरह से हमने धर्म-ग्रन्थों का उपयोग परलोक के लिए किया है। इहलोक के लिए उनका उपयोग नहीं है। हमारे देश में यह एक बड़ी भयानक वस्तु चलती है। इससे धर्म लगभग निकम्मा हो गया है। प्रत्यक्ष जीवन में उसका कोई उपयोग नहीं होता है। सब लोग कभी न कभी तो मरने ही वाले हैं, यह तो निश्चित है, इसलिए मरने के बाद जो तैयारी करनी होती है, वह खूब कर लेनी चाहिए। इसलिए धर्मग्रन्थ पढ़ते हैं। बुढ़ापे की तैयारी के लिए जवानी में पैसा इकट्ठा करते हैं और मरने की तैयारी के लिए रोज आधा घंटा नियमपूर्वक भागवत पढ़ना चाहिए। मैंने ऐसे लोग देखे हैं कि जो सुबह उठकर पाँच बजे नियमित रूप से कुछ-न-कुछ धर्म-ग्रन्थ पढ़ते हैं और जब काम होता है, तब पोथी को कपड़े में बराबर लपेटकर रखते हैं।

व्यापारी के पास उसकी बही पर 'श्री हरिः' लिखा रहता है। ऊपर तो 'श्री हरिः' होता है, अन्दर जो हो, सो हो। एक सेठ ने दीवाली के दिन अपनी बही की कुमकुम वगैरह लगाकर पूजा की और आरती करके नमस्कार किया। मैंने उससे पूछा, आप किसे नमस्कार करते हैं? वह कहने लगा, लक्ष्मी की उपासना है। लक्ष्मी देवी के तौर पर यह बही है। मैंने कहा कि 'श्री हरिः' जो लिखा है, उसका अर्थ तो श्री का हरण करनेवाला, लक्ष्मी, संपत्ति का हरण करनेवाला होता है। पर इस तरह हिंदुस्तान में बहुत चलता है। इसलिए सत्त्वगुण करीब-करीब बेकार हो गया है। एक ओर तो परलोक में श्रद्धा और दूसरी ओर इस लोक में। दूसरी कोई झंझट न हो, शरीर को और मन को तकलीफवाला कुछ भी काम नहीं करना चाहिए और अलग रहकर जप, तप, ध्यान-धारणा करनी चाहिए—ऐसी जो वृत्ति हिंदुस्तान में है, वह बहुत बहनों में भी है। बहनें सुबह उठकर भागवत या कोई धर्मग्रन्थ पढ़ती हों तो वह कोई खराब बात है, ऐसा मैं नहीं कहना चाहता, क्योंकि मैं भी भागवत का भक्त हूँ, परन्तु यह जो भक्ति और ज्ञान की उपासना है, उसमें निवृत्ति के नाम से आलस और परलोक के नाम से धर्म-ग्रन्थों का पठन—ये दोनों चीजें जब तक बन्द नहीं हो जायँगी, तब तक शांति-सेना का मैं जप करूँगा और एक दिन शान्त हो जाऊँगा।

शांति-सेना से लोकशाही की रक्षा

शांति-सेना के लिए मैंने जो आवाहन किया है, उसके बिना लोकशाही की रक्षा नहीं हो सकेगी, यह निश्चित समझ लीजिये। मैं सेना का निषेध नहीं करता हूँ। इस बारे में नेताओं के साथ मेरी बात भी हुई है। अपने मन में तो सेना का निषेध मैं करता हूँ, परन्तु आपके सामने केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि 'सेना लोकशाही का रक्षण कर सकती है', यह सोचना भ्रम है। लोकशाही का रक्षण तब तक नहीं होगा, जब तक निष्पक्ष, निर्वैर और निर्भय सेवकों की सेना सारे भारत में काम न करती हो। लोकशाही को मिटाने के लिए लश्कर के हाथ में सत्ता आने की जरा भी जरूरत नहीं है। लोकशाही तो ऐसे ही मिट सकती है।

चुनाव के दिनों में एक गाँव में एक बहन ने मुझे बताया कि चुनाव किस तरह हुआ, यह तो मालूम नहीं; परन्तु हमने तो पेटी में मत डाला है। उस चिट्ठी में क्या था, सो मालूम नहीं। हमारे पास तो तीन पेटियाँ रखी गयी थीं। हमने तीनों में यह समझकर मत डाला कि विष्णु भगवान कृपा करेगा, नहीं तो शंकर भगवान करेगा और नहीं तो नारायण करेगा। इस तरह बिना समझे मत डालेंगे तो गाँव का कुछ भला नहीं होगा। चुनाव का अगर यह अर्थ हो तो लोकशाही का स्वांग आप भले ही करते रहें, परंतु लोकशाही अस्तित्व में नहीं रहेगी, लश्कर आयेगा, फिर लोकशाही जायगी तो दूसरी लोकशाही आने के बाद यह लोकशाही मिट जायगी। लोकशाही का नाटक चले, लोग अपनी शक्ति महसूस न करें और किसी मनुष्य को पाँच साल के लिए चुनकर छुट्टी पा जायँ तो लोकशाही मर गयी, ऐसा समझना चाहिए।

आप सबको सेवा का, शांति-सेना का कार्यक्रम उठाना चाहिए। आज कुछ स्त्रियाँ मिलने आयी थीं। उनसे मैंने कहा कि स्त्रियों को शांति-सेना का विचार तुरन्त उठा लेना चाहिए। स्त्री-शक्ति, अहिंसा-शक्ति लोगों के काम में आनी चाहिए। आज क्या हो रहा है? पश्चिम के देशों में स्त्रियों की पलटन होती है। बन्दूक हाथ में लेकर बहनें 'एक-दो' करती हैं। हिंसा के कार्य में स्त्रियों का सहकार वे लोग लेते हैं। यह सारा बड़ा विचित्र है। माताओं के हाथ में बन्दूक रहेगी तो फिर समाज के लिए जो मुख्य स्थान था, वही मिट जायगा। इसलिए समाज धर्म की राह पर नहीं चलेगा। इसका अर्थ यह होगा कि काम करनेवाली जो शक्ति थी, वह विनाशक काम में लगी। भारत में धर्म की रक्षा स्त्रियों ने की है, यह बात बिलकुल सत्य है। अभी तक बहनों ने धर्म-रक्षण, संस्कृति और सभ्यता का रक्षण किया है। वे ही आज पलटनों में दाखिल हो जायँ, यह मुझे बहुत भयानक लगता है। बहनों को शांति-सेना का विचार उठा लेना चाहिए और हमारे देश में शांति-शक्ति प्रकट होनी चाहिए। गुजरात में यह विचार जोर से चलना चाहिए। यहाँके किसान मांसाहार से मुक्त हो चुके हैं। वे शांति-सैनिक के तौर पर आगे आयें और गांधीजी के गुजरात में अहिंसा की श्रद्धा प्रकट करें। ऐसी विशेष आशा रखने का अधिकार मुझे गुजरात से मिला है। शांति-सेना के लिए हर घर की सम्मति होनी चाहिए। हर घर में सर्वोदय-पात्र रखना चाहिए। आपकी प्रेम, करुणा, हिंसा और दया पर श्रद्धा है। श्रद्धा की कसौटी जो है, वह आपके सामने रखता हूँ।

अहिंसा का आवाहन

यह कसौटी बिलकुल आसान है, कठिन नहीं है। अयूबखान के हुक्म से कराची के दूध में पानी मिलाना एक दिन में बंद हो गया। धांगध्रा में एक ही दिन में साठ हजार घरों में सर्वोदय-पात्र

नहीं रखे जा सकते क्या ? यह जबरदस्ती नहीं है, ऐच्छिक काम है। ऐच्छिक काम जिस दिन जबरदस्ती से ज्यादा जबरदस्ती के रूप में होगा, उस दिन अहिंसा की शक्ति प्रकट होगी। यह अहिंसा का चित्र है। अहिंसा की ऐसी शक्ति है कि उसमें कोई जबरदस्ती नहीं हो सकती है। सब ऐच्छिक होता है। लोग अहिंसा और प्रेम की शक्ति की इतनी कद्र करें कि ऐच्छिक को ही जबरदस्ती से भी ज्यादा जबरदस्ती मानें। तब अयूबखान की आज्ञा का पालन करने में जहाँ चौबीस घंटे लगे, वहाँ विनोबा की आज्ञा आसानी से चौबीस मिनट में मानी जायगी। विचार पसंद आये, तभी उसे करना है। विचार पसंद न आये तो उसमें करने जैसा कुछ है ही नहीं। अगर विचार ठीक जँचे तो उसके अमल के लिए हिंसा-शक्ति में जो शक्ति है, उससे ज्यादा तीव्र शक्ति अहिंसा में होनी चाहिए।

बापू ने एक बार देखा कि अहिंसा का आवाहन जनता सुनती है या नहीं। उन्होंने विशिष्ट प्रसंग पर चौबीस घंटे के उपवास की घोषणा की तो राष्ट्र के हजारों लोगों ने उपवास किया और उससे यह मालूम हुआ कि अहिंसा की बात सुनने की मनःस्थिति में लोग हैं। फिर जब सत्याग्रह की बात हुई, तब देखा कि अहिंसा का आवाहन सुनने की मनःस्थिति में लोग हैं। इस तरह शांति-सेना की बात में भी मैं आसान-से-आसान बात रखता हूँ। घर के छोटे-छोटे लड़कों के हाथ से एक मुट्ठी अनाज सर्वोदय के नाम से, अहिंसा और शांति के नाम से सर्वोदय-पात्र में डालना चाहिए। यह काम सारा भारत उठाये और अखबार में यह खबर आ जाय कि ध्रांगध्रा में हर घर में सर्वोदय-पात्र रखा गया है, काशी और इलाहाबाद में सब घरों में सर्वोदय-पात्र रखा है। तब आप देखेंगे कि अहिंसा में क्रान्ति करने की जो शक्ति है, वह भारत में प्रकट हुए बिना नहीं रहेगी। ◆◆◆

ध्रांगध्रा, जि० झालावाड़ ९-१२-५८

सर्वोदय का यह जीवन-कार्य होकर रहेगा

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आज सुबह जैसा मैंने कहा, उसीके अनुसार यहाँ बहुत-सी बहनें उपस्थित हैं। अपने साथ बच्चे भी ले आयी हैं। बच्चे बोलते रहते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होती। लेकिन बहनें और भाई लोग न बोलें तो अच्छा हो। बच्चों की सुमधुर वाणी से मुझे परहेज नहीं। उससे मेरे व्याख्यान में किसी तरह की बाधा नहीं पड़ती। फिर भी व्याख्यान के अन्त में जब मैं मौन रखता हूँ, उस समय बच्चे भी मौन रहें, यह जरूरी है।

बच्चों को साथ में अवश्य लायें

मुझे याद है, बचपन में मेरे दादा चान्द्रायण व्रत किया करते थे। उस व्रत में चन्द्र उगने के बाद ही खाया जाता है। जैसे-जैसे चन्द्रमा की कला बढ़ती है, वैसे ही वैसे कौर भी बढ़ाये जाते हैं। और जैसी-जैसी वह घटती जाय, कौर भी घटते जाते हैं। प्रतिपदा को एक कौर से शुरू कर पूर्णिमा को १५ कौर और फिर दूसरी प्रतिपदा से एक-एक कौर कम करते हुए अमावास्या के दिन एक भी कौर नहीं खाया जाता। चतुर्दशी के दिन १४ कौर खाये जाते हैं। खाना रात में ही होता है, और वह कभी एक बजे, कभी दो बजे तो कभी तीन बजे। इस तरह इसमें सब प्रकार से अनियमितता हुआ करती है। खाने से पहले पूजा भी होती है। मेरे दादा का आग्रह रहता कि पूजा के समय बिन्या सो गया हो तो भी उसे उठाकर भगवान के गोड़ लगवाया जाय। ऐसा करते समय वह जग जाय तो भी कोई हर्ज नहीं। अगर न जागें तो फिर वैसे ही सुला दिया जाता था। यह घटना आज भी मुझे याद आ रही है और इसका मेरे हृदय पर बड़ा ही प्रभाव पड़ा है। कभी जाग जाता तो दादा मुझे खिलाते भी थे। पञ्चमी के दिन उन्हें पाँच ही कौर खाने पड़ते थे। उसमें से भी वे थोड़ा सा अंश मुझे देते, यह भी अच्छी तरह याद है। इसी तरह इन लड़कों को भी यह याद रहेगा कि मेरी माँ मुझे बाबा की सभा में ले गयी थी। फिर घर जाकर माँ उन्हें त्याग की बातें सुनायेगी तो उसका असर बच्चों पर अच्छा होगा। इसलिए माताएँ बच्चों को साथ में अवश्य लायें।

लोक-शक्ति और शासन-शक्ति का योग हो

सात-आठ वर्षों से भूदान, ग्रामदान का एक बहुत बड़ा प्रयत्न चल रहा है। इसमें शान्ति-सेना की बात भी खड़ी हो गयी है। कार्यकर्ता यह सन्देश लेकर काम करेंगे। समझने की बात है कि आज भारत में अपनी स्वराज्य की सरकार काम कर रही है। अंग्रेजी राज्य के जमाने में सरकार और जनता के बीच झगड़ा हुआ करता था, पर आज ऐसा झगड़ा नहीं है। अतः जनता के प्रतिनिधि जन-सेवा का काम करें और सरकार द्वारा भी यह काम होना चाहिए। अवश्य ही आज अमुक-अमुक काम हो रहे हैं और आगे भी वे इससे अधिक होंगे। लेकिन लोकतन्त्र, अहिंसा, राष्ट्र-रक्षा और धर्म के लिए वह पर्याप्त नहीं है। इसके लिए लोगों की ओर से भी प्रोत्साहन और मदद होनी चाहिए। लोगों में स्वतन्त्र जागृति होनी चाहिए और सरकार लोक-शक्ति से पूर्ण होनी चाहिए। जब लोक-शक्ति और सरकार दोनों मिलकर करेंगे, तभी काम पूरा होगा।

लोक-शक्ति ही मुख्य, शासन-शक्ति गौण

इसमें मुख्य शक्ति लोक-शक्ति ही होनी चाहिए, सरकार गौण शक्ति हो। लोक-शक्ति जहाँ एक अंक रहेगी, वहाँ सरकारी शक्ति शून्य। इस तरह एक और शून्य मिलकर दस होंगे। यदि अकेली लोक-शक्ति काम करे तो एक अंक होगा, किन्तु केवल सरकार-शक्ति से काम किया जाय तो काम भी शून्य ही होगा। बिना अंक के शून्य की कीमत शून्य होती है, वैसे ही लोक-शक्ति के बिना सरकार की शक्ति शून्य ही होगी। आज भारत में सरकार-शक्ति लगभग शून्य होने की स्थिति में आ पहुँची है। लोगों में उत्साह का अभाव होने से उसमें प्राण संचारित नहीं हो पाता। लोगों को ऐसा विश्वास ही नहीं होता कि स्वराज्य के बाद हमारी शक्ति बढ़ी है। फिर अकेली लोक-शक्ति भी कितना कर सकती है ? अतः लोक-शक्ति का एक अंक और सरकारी शक्ति का शून्य दोनों मिलकर दस होंगे, यह गणित लोगों के ध्यान में आ जायगा, ऐसा मुझे विश्वास है।

मैं साबरमती-आश्रम में था तो गणित सिखलाता था। गणित मेरा प्रिय विषय है। मुझे विश्वास है कि बिना गणित के भारत का काम ही न चलेगा। एक बार लिखना-पढ़ना न आये तो भी चल सकता है, पर बिना गणित के नहीं चलेगा। परमात्मा पर विश्वास एक शक्ति है और दूसरी शक्ति है गणित का ज्ञान। ये दोनों बातें मुझे सबसे अधिक महत्त्व की मालूम पड़ती हैं। इसीलिए मैं मानता हूँ कि लोक-शक्ति एक और सरकार शक्ति शून्य, दोनों मिलकर दस होंगे।

लोक-शक्ति के निर्माता कैद में

आजकल बड़ी-बड़ी चर्चाएँ एवं मन्त्रणाएँ हुआ करती हैं कि यह लोक-शक्ति उत्पन्न कैसे हो ? फिर भी कुछ सूझ नहीं पड़ता। कारण जिनके बदौलत लोग कुछ लोक-शक्ति पैदा कर सकें, वे पिंजड़े में बन्द हैं। ये पिंजड़े लोगों ने ही बनाये हैं। ये लोग शहरों में घूमते हैं, इसलिए लोक-शक्ति जागृत करने के लिए ये समय नहीं दे पाते। फिर अन्य कार्यकर्ता रचनात्मक संस्थाओं में कैद हैं। ये रचनात्मक संस्थाएँ आज कार्यकर्ताओं को कैद करने के साधन बन गयी हैं। मैंने ऐसी संस्थाएँ देखी हैं, जिनमें कार्यकर्ता २४ घण्टे काम किया करते हैं। चूँ तक नहीं करते। फिर भी आसपास की जनता से उनका कतई सम्बन्ध नहीं रहता। इस अर्थ में ये लोग स्वावलम्बी हो गये हैं। इन्हें जनता की जरा भी परवाह नहीं। भले ही सरकार से इन्हें कुछ मदद मिलती हो। इस तरह कितने तो संस्थाओं में कैद हो गये हैं और कितने ही राजनीति में पड़ गये हैं।

राजनैतिक दल लोक-शक्ति के भंजक

जो राजनीति में पड़े हैं, वे तो लोक-शक्ति के टुकड़े ही करते हैं। जहाँ सीधे काम चलता था, वहाँ भी पहुँचकर ये लोग दल-बन्दी खड़ी कर देते हैं। मैंने इनकी यह करतूत देखी है। एक ग्रामदान का गाँव रहा। सभीने मिलकर ग्रामदान कर दिया, लेकिन वहाँ चुनाव के लिए ये राजनैतिक लोग पहुँचे और आग लगाकर चल दिये। फिर आग बुझाने के लिए फायर ब्रिगेड नहीं आया और ग्रामदान में विश्वास नहीं बैठ पाया। आप पूछ सकते हैं कि इसमें ये लोग किसी तरह बिगाड़ कैसे पैदा कर पाते हैं ? ग्रामदानी गाँवों पर किसीका भी असर नहीं होना चाहिए। आप ठीक कह रहे हैं, लेकिन ग्रामदान होने का अर्थ यह नहीं कि वह एकदम मजबूत ही होता हो। शुरुआत में वह बालक जैसा ही हुआ करता है। याने प्राथमिक अवस्था में इस भावना का बच्चों की तरह पालन-पोषण करना पड़ता है। ऐसे समय चुनाववाले आयें और विषवाद के बीज जो जायँ तो इनके जाने के बाद वहाँ विषवाद काफी उगता है। यह बात मैंने कितने ही गाँवों में देखी है। मैं कहना यह चाहता हूँ कि दलों में फँसे हुए लोग जन-शक्ति पैदा नहीं करते, बल्कि उसको नष्ट-भ्रष्ट ही करते हैं। ये हृदय से ऐसा नहीं चाहते, फिर भी इनकी करनी से अप्रत्यक्ष लोक-शक्ति का भंजन ही हो जाया करता है।

सारांश, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक आदि जहाँ-जहाँ मैं गया, मुझे यही स्थिति दीख पड़ी कि एक ओर कुछ लोग रचनात्मक कार्य और सरकार में कैद हो गये हैं तो दूसरी ओर कुछ लोग इस तरह विषवाद को उगाया करते हैं। फलतः हिन्दुस्तान में स्वतन्त्र लोक-शक्ति का निर्माण ही नहीं हो पाता।

मेरा काम लोक-शक्ति का निर्माण ही

गत सात-आठ वर्षों से मैं यही लोक-शक्ति निर्माण करने के लिए घूम रहा हूँ। मुझे लगता है कि इसमें थोड़ी-बहुत सफलता अवश्य मिलेगी। लोगों को यह काम बहुत पसन्द पड़ रहा है और लगता है कि इसमें लोक-शक्ति का उदय हो रहा है। अतः आप लोग भी इसी दृष्टि से इसकी ओर देखें। मैं चाहता हूँ कि हर घर में सर्वोदय-पात्र रहे। मेरी यह वासना है कि हिन्दुस्तान में ऐसा एक भी घर न रह जाय, जहाँ घर-गृहस्थी और बाल-बच्चे हों और सर्वोदय-पात्र न रहे। मेरे पास न कोई सत्ता है और न कोई संस्था, जिसके जरिये मैं आप लोगों से यह काम करवा सकूँ। मैं आपसे यह भी कह देना चाहता हूँ कि मेरा इन सबपर कतई विश्वास नहीं है और न मैं यही चाहता हूँ कि इनमें से कोई चीज मुझे मिले। आपको प्रेमपूर्वक समझाना ही मेरी विद्या, मेरी कला और मेरा शस्त्र है। मुझे यह देख सन्तोष होता है कि भारत के गाँव और शहरवालों पर इस प्रेमपूर्ण समझाने का असर होता है और सबको वह पसंद भी पड़ता है। फिर भी इसमें उन्हें दृढ़ विश्वास नहीं होता, जिससे बाबा की स्थिति जरा कठिन हो जाती है।

काम पसंद, पर दृढ़ विश्वास नहीं

यह सच है कि बाबा का यह काम सभी अपना काम मानते हैं। पी० एस० पी०वाले कहते हैं कि बाबा का काम, ग्रामदान का काम हमारा ही काम है। कांग्रेस और कम्युनिस्ट भी यही कहते हैं। जनसंघी कहते हैं कि बाबा का काम भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही है। इस तरह ये सभी हमसे आ मिलते हैं। सर्वोदय में सभीको अपना रूप देने की ताकत है। यह मैं ही नहीं कहता, गीता में भी यही लिखा है :

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

येलवाल-परिषद् की सर्वदलीय घोषणा से यह बात और भी स्पष्ट हो चुकी है। फिर भी उन लोगों में अभी इसके प्रति दृढ़ विश्वास नहीं है। मैसूर में कम्युनिस्टों से यह पूछने पर कि "आपने ग्राम-दान को सम्मति कैसे दे दी ?" उन्होंने स्पष्ट कहा कि "यदि ग्रामदान चले तो वह कम्युनिस्टों का वैकल्पिक कार्य हो सकता है। लेकिन सवाल यही है कि यह चलेगा या नहीं ? यदि लोग बाबा की बात मानें तो भले ही यह प्रयोग सफल हो सकता है।" केरल की सर्वोदय-परिषद् में भी वहाँके एक मंत्री ने कहा था कि हम यह नहीं मान सकते कि कानून द्वारा जमीन की मालकियत मिट सकती है। यदि यह काम इस तरह (ग्रामदान से) हो सके तो बहुत अच्छा होगा। सारांश, काम अच्छा होने पर भी इसकी सफलता में विश्वास नहीं है।

मैं कांग्रेसवालों से पूछता हूँ कि आप अपने कलेजे पर हाथ रखकर कहें कि क्या आपको यह श्रद्धा है कि यह काम सफल हो सकता है। सच तो यह है कि उन्हें भी यही लगता है कि इससे और कुछ न हो तो भी नैतिक शक्ति का लाभ अवश्य होगा। याने उन्हें भी कम्युनिस्टों की तरह यह सच्चा विश्वास नहीं है कि इससे यह काम होगा ही।

भगवत्प्रेरणा में अविश्वास कैसे ?

मैं भी यदि परमात्मा की श्रद्धा खो बैठूँ तो मुझे भी यह नहीं लगता कि यह काम मुझसे हो सकता है ! तीन-तीन साल हो गये, लगातार प्रयत्न के बाद बड़ी मुश्किल से पाँच हजार ग्रामदान और वह भी छिटपुट तौर पर मिल पाया है। अब आप हिसाब लगायें कि पाँच हजार ग्रामदान में दो साल तो पाँच लाख ग्रामदान पाने में कितने साल लग जायँगे ? क्या इस हिसाब से विश्वास रखने योग्य जवाब मिल सकता है ? फिर भी बाबा इस पर इसलिए विश्वास रखता है कि यह काम परमात्मा की प्रेरणा से हो रहा है। उसकी यह प्रेरणा है कि ग्रामदान के बिना हिन्दुस्तान टिक नहीं सकता। आज के विज्ञान-युग में तो जब ग्राम-स्वराज स्थापित होंगे और लोग संकल्पपूर्वक यह काम करेंगे, तभी गाँव टिक सकेंगे। इससे अलग बात आज तक कोई भी मुझे समझा नहीं सका। नेताओं के साथ मेरी बातें हुई हैं। अर्थशास्त्रियों से भी मैं विचार-विमर्श कर चुका हूँ। कोई भी मुझे यह समझा नहीं पाया कि बिना ग्रामदान के ग्राम-स्वराज्य का कोई दूसरा रास्ता हो सकता है।

क्रांति एक क्षणभर में

वास्तव में यह काम कैसे पूरा होगा, यह विचारणीय प्रश्न ही नहीं है। यह तो समझने की बात है। मान लीजिये, किसी गुफा में दस हजार साल पुराना अन्धकार था। कई लोग सोचते रहे कि इसे दूर कैसे किया जाय। उनमें से कुछ लोग कुदाल, फावड़ा और टोकरी ले आये और अन्धेरा खोद-खोदकर बाहर फेंकने लगे। घंटेभर तक सबने बड़ी मेहनत की, पर अँधेरा मिटता ही नहीं था। इसी बीच एक व्यक्ति को लगा कि यह क्या हो रहा है, चलकर देखा जाय। इसलिए वह फानूस (दीया) लेकर आया तो तत्काल अन्धकार खत्म हो गया। वे लोग सोचने लगे कि हम लोगों ने खोद-खोदकर घड़ों पसीना बहाया, फिर भी अँधेरा नहीं मिटा, पर इसके आने के साथ ही यह एकदम कैसे बन पड़ा?

सारांश, जब ज्ञान-प्रकाश आता है, विचार-परिवर्तन हो जाता है तो क्षणभर में कान्ति छा जाती है, क्षणभर में क्रान्ति हो जाती है। फिर कान्ति या क्रान्ति के लिए दो क्षणों की आवश्यकता नहीं। मानव मरता है तो एक ही क्षण में मरता है। वह भले ही वर्षों जीये, पर मरने के लिए एक से अधिक दो क्षण भी नहीं लगते। इसी तरह शान्ति भी एक ही क्षण में हो जाती है। मृत्यु आती है तो एक ही क्षण में आती है। लेकिन उसे लाने के लिए बड़ा ही श्रम करना पड़ता है। बहुत खाना पड़ता है और भी कई मूर्खताएँ करनी पड़ती हैं। इसलिए विचार-प्रचार करना और उसके लिए हजारों की शान्ति-सेना खड़ी करनी पड़े तो वह ठीक ही है। शान्ति सेना और सर्वोदय-पात्र भी इसीलिए है।

कठिन काम में ही विशेष उत्साह

बहुत से लोग कहते हैं कि "आपने यह क्या मचा रखा है? जो बात सहज होने ही वाली है, उसके लिए आप इतना हाय-तोबा क्यों मचाते हैं?" मैं कहता हूँ कि भाई, जो काम सरलता से हो सकते हैं, उन्हें आप सभी करते ही हैं। आप सभी खाते हैं, पीते हैं, सोते हैं। अगर ये काम भी सहज हो जाते हैं तो उनके लिए प्रयत्न क्यों करते हैं? उसके लिए इतनी उछल-कूद क्यों मचाते हैं? बात यह है कि कठिन काम के लिए प्रचार आवश्यक हुआ करता है। खाने-पीने और मृत्यु आने पर मरने के लिए किसी तरह का विचार या हलचल करने की कोई जरूरत नहीं। फिर भी लोग वह करते ही हैं। इस दृष्टि से देखें तो यह काम जरा असंभव और कठिन है। इसीलिए यह करने का मुझे उत्साह होता है।

सब कुछ आपके संकल्प पर निर्भर

एक भाई ने कहा कि इस तरह तो यह पूरा होने में पाँच सौ वर्ष लग जायँगे। मैंने कहा, इसका अर्थ आप क्या समझते हैं? इसका अर्थ तो यह होता है कि मैं पाँच सौ वर्ष तक जीऊँ, यह आप आशीर्वाद दे रहे हैं। यदि परमेश्वर ने यही तय किया हो कि इस काम के लिए मैं पाँच सौ वर्ष जीऊँ तो मैं क्योंकर जल्दी मरूँ? यदि यह काम मेरे पास न हो तो मैं आज ही मरना चाहूँगा। लेकिन यदि भगवान यह कहता हो कि तुम्हें यह काम करने के लिए तब तक जिन्दा रहना होगा तो मैं क्योंकर जल्दी मरना चाहूँ? आत्मा सत्यकाम हुआ करती है। उसकी कामना पूरी हुए बगैर नहीं रहती। इसलिए यहाँ उपस्थित आप सभी यह निश्चय करें कि यह काम पाँच सौ वर्ष तक लम्बा नहीं चलाना है तो वह वैसा नहीं भी हो सकता है। यह तो आप लोगों के संकल्प पर ही निर्भर है।

सर्वोदय के लिए शत प्रतिशत ही मतदान

कई लोग कहते हैं कि "आप ग्रामदान और सर्वोदय-पात्र की बात करते हैं। शत प्रतिशत लोग यह करें, ऐसा आग्रह करते हैं तो जबान को कुछ लगाम रखते हैं या नहीं? व्यर्थ ही आप ऐसा आग्रह क्यों करते हैं?" मैं कहता हूँ कि यह काम कांग्रेस का मतदान नहीं है, जो चालीस प्रतिशत मिल जाने पर भी काम चल सके। यह तो जीवन के लिए मतदान है। राजनीति में चालीस या बीस प्रतिशत भी मतदान चल सकता है और कभी-कभी वह बिलकुल ही न हो, तब भी काम चल जाता है। पाकिस्तान में ही देखिये कि क्या अयूब खाँ को १ प्रतिशत भी मत प्राप्त है? आजकल वह रामायण का बड़ा भक्त बन गया है। इसीलिए खान अब्दुल गफ्फार खाँ को १४ साल की सजा होनेवाली है। भगवान जाने १४ होगी या २८! यह सब वह बिना मत पाये ही कर पाता है। इस तरह स्पष्ट है कि राजनीति में शून्य मतदान भी चल सकता है। किन्तु सर्वोदय के लिए तो शत प्रतिशत ही मतदान चाहिए। कारण यह जीवन के लिए मतदान है। लोग पूछते हैं कि क्या शत प्रतिशत भी मतदान हो सकता है? इसपर मैं भी उनसे पूछता हूँ कि आप मरने के लिए जो मतदान देते हैं, वह शत प्रतिशत देते हैं या नहीं? फिर जीवन के लिए उससे कम मतदान कैसे चल सकता है? भले हो हम देर-अबेर में मरें, पर मरना तो निश्चित ही है। इसी तरह विचार को पकड़ने के लिए भले ही देर लगे, लेकिन उसे सबको पकड़ना ही होगा।

मैं सर्वथा निर्भय और निश्चिन्त

भाइयो! यही श्रद्धा रखकर और भगवान की प्रेरणा से मैं यह काम करता हूँ। इसी कारण मेरा उत्साह बढ़ता ही जाता है। थकान का तनिक भी अनुभव नहीं होता। जिसका जीवन रसमय हो गया हो, उसमें थकान की गुंजाइश ही नहीं रहती। मैं तो इन सात वर्षों में और भी मजबूत हो गया हूँ। मुझे लगता है कि मृत्यु को मेरे पास पहुँचने में देर लगेगी। एक जगह बैठे रहनेवाले के पास तो मौत पहुँच भी सकती है। लेकिन जो अपने पैरों चलता ही रहता है, उसके पास पहुँचने में मौत को भी देर लगती है। मुझे विश्वास है कि मेरे लिए जो क्षण लिखा है, मैं उससे एक क्षण भी पहले नहीं मर सकता। इसलिए मुझे जरा भी डर नहीं और न यही लगता है कि यह काम होगा या नहीं? यह जीवन का काम है, इसलिए यह होने ही वाला है। यदि यहाँ हिंसा की शक्ति पैदा होगी तो यूरोप, अमेरिका में जो भस्मासुर पैदा हो गया है, वही हमारे यहाँ भी पैदा होगा। यदि हम ऐसा नहीं चाहते तो इस काम को शीघ्र-से-शीघ्र अपना लें। ◆◆◆

पड़ाव : लींबड़ी (झालावाड़)
दिनांक : १३-१२-५८

अनुक्रम

१. सर्वोदय लाने के लिए...	साबरमती	२१ दिसम्बर	९
२ लोकशाही पर हमला...	धांगध्रा	९ दिसम्बर	११
३ सर्वोदय का यह...	लींबड़ी	१३ दिसम्बर	१४

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ०भा० सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित मुद्रित और प्रकाशित।